

कबीरदास के साहित्य में शोषित एवं वंचित वर्गों की समस्याओं का चित्रण

रूबी कांत¹ एवं डॉ. सिमित्रा चौधरी²

¹शोधार्थी, हिंदी-विभाग

²शोध निर्देशक, हिंदी-विभाग

सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

सारांश

कबीरदास हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के प्रमुख निर्गुण संत कवि थे, जिन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से मध्यकालीन भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, सामाजिक असमानता, धार्मिक पाखंड, आर्थिक विषमता तथा मानवीय शोषण का विरोध किया। उनका साहित्य केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें सामाजिक चेतना, मानवीय समानता और अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति भी मिलती है। कबीर स्वयं बुनकर समुदाय से संबंधित थे और उन्होंने समाज में प्रचलित ऊँच-नीच की भावना, जाति के आधार पर व्यक्ति के मूल्यांकन तथा धार्मिक कर्मकांडों की आलोचना की।

मुख्य संकेतक: शोषित वर्ग, वंचित समुदाय, जातिगत भेदभाव, सामाजिक न्याय, निर्गुण भक्ति, समानता, सामाजिक चेतना।

परिचय

मध्यकालीन भारतीय समाज अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक विषमताओं से प्रभावित था। जाति-व्यवस्था, ऊँच-नीच की भावना, अस्पृश्यता, धार्मिक कर्मकांड और सामाजिक प्रतिष्ठा के असमान वितरण ने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच दूरी उत्पन्न कर रखी थी। विशेष रूप से निम्न समझी जाने वाली जातियों, श्रमिक समुदायों, कारीगरों तथा आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को अनेक सामाजिक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था। ऐसी परिस्थितियों में भक्ति आंदोलन ने व्यक्ति और ईश्वर के संबंध को सामाजिक प्रतिष्ठा तथा बाहरी आडंबरों से अलग करके देखने की दृष्टि प्रदान की। कबीरदास इसी व्यापक संत परंपरा के महत्त्वपूर्ण कवि थे। उनकी रचनाओं में धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध निर्भीक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। हेस और सिंह (2002) के अनुसार, कबीर की काव्य-वाणी में जातिगत श्रेष्ठता की धारणा का विरोध तथा मनुष्य की समानता पर बल विशेष महत्त्व रखता है।

कबीर ने सामाजिक समस्याओं को केवल बाहरी व्यवस्था की समस्या नहीं माना, बल्कि मनुष्य की मानसिकता, अहंकार, लोभ और भेदभावपूर्ण व्यवहार से भी जोड़ा। उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि मनुष्य की वास्तविक पहचान उसकी जाति, वंश,

धन या धार्मिक पद से नहीं, बल्कि उसके आचरण, ज्ञान और मानवीय गुणों से निर्धारित होनी चाहिए। इस दृष्टि से उनका साहित्य शोषित एवं वंचित वर्गों की गरिमा और अधिकारों से संबंधित विमर्श का महत्वपूर्ण आधार बनता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. कबीरदास के साहित्य में शोषित एवं वंचित वर्गों की समस्याओं का अध्ययन करना।
2. उनकी वाणी में जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता के विरोध का विश्लेषण करना।
3. धार्मिक पाखंड, कर्मकांड और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति कबीर की आलोचनात्मक दृष्टि को समझना।
4. कबीर साहित्य में श्रम, मानवीय गरिमा और सामाजिक समानता के महत्व का मूल्यांकन करना।
5. समकालीन समाज में कबीर के विचारों की प्रासंगिकता का परीक्षण करना।

समीक्षा की पद्धति

प्रस्तुत समीक्षा पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक साहित्य-समीक्षा पद्धति पर आधारित है। इसमें कबीर की प्रचलित साखियों, दोहों, पदों तथा बीजक और कबीर ग्रंथावली जैसे पाठ-संग्रहों को अध्ययन का आधार माना गया है।

इसके अतिरिक्त कबीर की सामाजिक चेतना, जाति-विरोधी दृष्टिकोण और सामाजिक न्याय संबंधी विचारों पर उपलब्ध शोध-पत्रों एवं आलोचनात्मक अध्ययनों की समीक्षा की गई है। हेस और सिंह (2002), फर्नांडो (2016) तथा कबीर के साहित्य में सामाजिक चेतना पर प्रकाशित अध्ययनों से संबंधित विचारों को विश्लेषण में शामिल किया गया है।

यह अध्ययन द्वितीयक साहित्य और पाठ-विश्लेषण पर आधारित है। इसमें कोई प्राथमिक सर्वेक्षण अथवा सांख्यिकीय परीक्षण नहीं किया गया है। कबीर की वाणी के विभिन्न पाठ-रूपों और मौखिक परंपराओं को ध्यान में रखते हुए दोहों की व्याख्या उनके व्यापक सामाजिक एवं साहित्यिक संदर्भ में की गई है।

कबीर साहित्य में जातिगत भेदभाव एवं सामाजिक असमानता

कबीरदास के साहित्य में जाति-व्यवस्था की आलोचना प्रमुख विषय के रूप में सामने आती है। मध्यकालीन समाज में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा प्रायः उसकी जाति और जन्म से निर्धारित होती थी। ऐसी व्यवस्था में श्रम करने वाले समुदायों तथा तथाकथित निम्न जातियों को सम्मान और समान अवसर प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कबीर ने इस धारणा को चुनौती देते हुए मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार उसके ज्ञान, व्यवहार और आध्यात्मिक चेतना को माना। उनसे संबद्ध प्रसिद्ध साखी है-

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान। मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

यह साखी जन्म-आधारित श्रेष्ठता के स्थान पर ज्ञान और गुणों को महत्व देने का संदेश देती है। इसके माध्यम से सामाजिक प्रतिष्ठा की प्रचलित धारणाओं पर प्रश्न उठाया जा सकता है। फर्नांडो (2016) के अध्ययन में भी कबीर की कविता को जातिगत विभाजन के विरोध और समतामूलक सामाजिक दृष्टि के संदर्भ में समझा गया है।

कबीर की जाति-विरोधी चेतना का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने सामाजिक असमानता को केवल व्यक्तिगत दुर्भावना नहीं माना, बल्कि उन मान्यताओं को भी चुनौती दी जिनके माध्यम से भेदभाव को उचित ठहराया जाता था। इस प्रकार उनका साहित्य सामाजिक सम्मान, समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना के लिए वैचारिक आधार प्रदान करता है।

श्रमिक एवं आर्थिक रूप से वंचित वर्गों की समस्याएँ

कबीरदास की सामाजिक दृष्टि में श्रम और साधारण जीवन का विशेष महत्त्व है। बुनकर समुदाय से जुड़े होने के कारण उनकी सामाजिक पहचान पारंपरिक पेशे और श्रम-संस्कृति से संबंधित रही। उनके साहित्य में बाहरी प्रतिष्ठा, धन-संपत्ति और सामाजिक पद की अपेक्षा आंतरिक गुणों तथा नैतिक आचरण को अधिक महत्त्व दिया गया है। यह दृष्टिकोण उन समुदायों के लिए विशेष अर्थ रखता है जिनकी सामाजिक स्थिति उनके पेशे के कारण कमतर आँकी जाती थी।

श्रमिक वर्ग की समस्याओं में आर्थिक संसाधनों की कमी, सामाजिक सम्मान का अभाव और प्रभावशाली समूहों पर निर्भरता जैसे प्रश्न शामिल रहे हैं। कबीर की वाणी इन समस्याओं का आधुनिक अर्थों में व्यवस्थित आर्थिक अध्ययन प्रस्तुत नहीं करती, लेकिन वह सामाजिक श्रेष्ठता की उन धारणाओं का विरोध अवश्य करती है जिनमें श्रम करने वाले व्यक्ति को कम महत्त्व दिया जाता है। उनके विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति की गरिमा को उसकी आर्थिक स्थिति अथवा पेशे से निर्धारित नहीं किया जाना चाहिए।

ललितम्मा और ओकेंद्र (2022) के अध्ययन में कबीरकालीन समाज की जाति, पेशे, धन और सामाजिक स्थिति से संबंधित विविध श्रेणियों पर चर्चा की गई है। यह अध्ययन कबीर के साहित्य को सामाजिक संरचना के संदर्भ में समझने में उपयोगी है।

धार्मिक पाखंड एवं कर्मकांड का विरोध

कबीरदास ने धार्मिक संस्थाओं और परंपराओं में प्रचलित आडंबर, अंधविश्वास तथा बाहरी प्रदर्शन की आलोचना की। उनके अनुसार, धार्मिकता का वास्तविक मूल्य मनुष्य के आचरण, सत्यनिष्ठा और अंतःकरण की शुद्धता में निहित है। जब धर्म का उपयोग सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने, दूसरों को नीचा दिखाने अथवा लोगों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए किया जाता है, तब वह अपने मानवीय उद्देश्य से दूर हो जाता है।

कबीर की प्रसिद्ध साखी है-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥

इस साखी में ज्ञान के केवल बाहरी प्रदर्शन के स्थान पर प्रेम और मानवीय संवेदना को महत्त्व दिया गया है। इसी प्रकार कबीर ने हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों में प्रचलित रूढ़ियों की आलोचना की। उनकी आलोचना का केंद्रीय उद्देश्य किसी एक धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करना नहीं, बल्कि धार्मिक आचरण में सत्य, करुणा और आत्मबोध को प्रमुखता देना था।

लोरेन्जेन (2014) के अनुसार, कबीर और कबीरपंथ से जुड़ी परंपराओं में सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध असहमति की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है।

इस दृष्टि से कबीर का साहित्य उन वंचित समुदायों के लिए भी महत्वपूर्ण है जिन्हें धार्मिक संस्थाओं या सामाजिक परंपराओं के आधार पर भेदभाव का सामना करना पड़ता था।

स्त्रियों एवं अन्य वंचित समूहों की स्थिति

कबीर साहित्य में स्त्री, परिवार, माया और सांसारिक संबंधों से संबंधित विविध विचार मिलते हैं। उनकी वाणी में एक ओर मानवीय समानता और आंतरिक शुद्धता पर बल मिलता है, वहीं दूसरी ओर स्त्री संबंधी कुछ कथनों की व्याख्या उनके ऐतिहासिक तथा आध्यात्मिक संदर्भ में सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए। इसलिए कबीर को आधुनिक लैंगिक समानता के सभी विचारों का प्रत्यक्ष समर्थक मानना उचित नहीं होगा।

फिर भी, उनकी व्यापक सामाजिक दृष्टि में जन्म, प्रतिष्ठा और बाहरी पहचान के आधार पर मनुष्य का मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति पर प्रश्न उठाने की क्षमता मौजूद है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनके समानतावादी विचारों का उपयोग स्त्रियों, श्रमिकों, दलित समुदायों और अन्य वंचित समूहों की गरिमा पर चर्चा के लिए किया जा सकता है। सीमा द्वारा प्रकाशित अध्ययन में भी कबीर साहित्य में सामाजिक भेदभाव, स्त्री संबंधी दृष्टिकोण और सामाजिक दुर्गुणों की आलोचना पर विचार किया गया है।

कबीर की भाषा एवं काव्य-शैली में प्रतिरोध की अभिव्यक्ति

कबीरदास की भाषा जनसामान्य के निकट थी। उन्होंने कठिन दार्शनिक प्रश्नों को लोकभाषा, साखी, दोहे और पदों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। उनकी रचनाओं में व्यंग्य, प्रतीक, उलटबाँसी, प्रश्लात्मक शैली और स्पष्ट कथन का प्रभावशाली प्रयोग मिलता है। इस शैली के कारण उनके विचार केवल विद्वानों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि सामान्य लोगों के बीच भी प्रसारित हुए।

कबीर की काव्य-भाषा का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उसमें स्थापित सामाजिक मान्यताओं को सीधे चुनौती देने की क्षमता है। वे धार्मिक पदाधिकारियों, जातिगत श्रेष्ठता का दावा करने वालों और बाहरी आडंबर में उलझे व्यक्तियों से प्रश्न करते हैं। इस प्रकार उनका साहित्य सामाजिक आलोचना को जनभाषा से जोड़ता है।

हेस और सिंह (2002) ने “कबीर का बीजक” में कबीर की मौखिक काव्य-परंपरा, साखियों, पदों और उनकी विशिष्ट अभिव्यक्ति-शैली को प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ कबीर की रचनाओं की साहित्यिक संरचना तथा सामाजिक आलोचना को समझने में उपयोगी है।

संबंधित साहित्य की समीक्षात्मक समीक्षा

कबीर साहित्य पर उपलब्ध अध्ययनों को देखने से स्पष्ट होता है कि उनकी सामाजिक चेतना को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझा गया है।

लेखक एवं अध्ययन वर्ष का प्रमुख विषय वर्तमान समीक्षा में कमी	हेस एवं सिंह (2002) द बीजक ऑफ कबीर, काव्य-परंपरा और सामाजिक आलोचना, जातिगत श्रेष्ठता, धार्मिक रूढ़ियाँ और मानवीय समानता का विश्लेषण	लॉरेनज़ेन (2014) कबीर और कबीर पंथ में असहमति की परंपरा, सामाजिक एवं धार्मिक, प्रभुत्व के विरुद्ध प्रतिरोध
फर्नांडो (2016) कबीर की कविता और जाति-व्यवस्था, भेदभाव के विरोध का समकालीन	फ्रीडलैंडर (2012) कबीर की पहचान, मुद्रण और शास्त्रीय परंपरा कबीर की सामाजिक पहचान का ऐतिहासिक वर्णन	ललितम्मा एवं ओकेंद्र (2022) कबीरकालीन सामाजिक स्थिति और जातीयता, डूब, धन और सामाजिक

असंतोष		स्थिति का संबंध
लेखक एवं अध्ययन वर्ष का प्रमुख विषय वर्तमान समीक्षा में कमी	हेस एवं सिंह (2002) द बीजक ऑफ कबीर, काव्य-परंपरा और सामाजिक आलोचना, जातिगत श्रेष्ठता, धार्मिक रूढ़ियाँ और मानवीय समानता का विश्लेषण	लॉरेनज़ेन (2014) कबीर और कबीर पंथ में असहमति की परंपरा, सामाजिक एवं धार्मिक, प्रभुत्व के विरुद्ध प्रतिरोध
फर्नांडो (2016) कबीर की कविता और जाति-व्यवस्था, भेदभाव के विरोध का समकालीन असंतोष	फ्रीडलैंडर (2012) कबीर की पहचान, मुद्रण और शास्त्रीय परंपरा कबीर की सामाजिक पहचान का ऐतिहासिक वर्णन	ललितम्मा एवं ओकेंद्र (2022) कबीरकालीन सामाजिक स्थिति और जातीयता, डूब, धन और सामाजिक स्थिति का संबंध
लेखक एवं अध्ययन वर्ष का प्रमुख विषय वर्तमान समीक्षा में कमी	हेस एवं सिंह (2002) द बीजक ऑफ कबीर, काव्य-परंपरा और सामाजिक आलोचना, जातिगत श्रेष्ठता, धार्मिक रूढ़ियाँ और मानवीय समानता का विश्लेषण	लॉरेनज़ेन (2014) कबीर और कबीर पंथ में असहमति की परंपरा, सामाजिक एवं धार्मिक, प्रभुत्व के विरुद्ध प्रतिरोध

स्रोत: संबंधित प्रकाशनों के उपलब्ध विवरण और सारांश के आधार पर संकलित।

उपर्युक्त अध्ययनों से तीन प्रमुख निष्कर्ष सामने आते हैं। पहला, कबीर का साहित्य जाति और सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर निर्मित असमानताओं की आलोचना करता है। दूसरा, उनकी धार्मिक आलोचना का सामाजिक पक्ष भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह बाहरी कर्मकांड की अपेक्षा मानवीय आचरण को प्राथमिकता देता है। तीसरा, कबीर की आधुनिक व्याख्या में उनकी ऐतिहासिक परिस्थितियों, मौखिक परंपरा और विभिन्न पाठ-रूपों का ध्यान रखना आवश्यक है। फ्राइडलैंडर (2012) ने कबीर की पहचान के ऐतिहासिक निर्माण तथा मुद्रण-संस्कृति की भूमिका पर प्रकाश डाला है, जिससे यह समझने में सहायता मिलती है कि अलग-अलग कालखंडों में कबीर की सामाजिक छवि की व्याख्या किस प्रकार हुई।

शोध-अंतराल: उपलब्ध साहित्य में कबीर की जाति-विरोधी चेतना, धार्मिक आलोचना और सामाजिक दर्शन पर उपयोगी अध्ययन मिलते हैं। फिर भी, इन विषयों को शोषित एवं वंचित वर्गों की सामाजिक प्रतिष्ठा, श्रम, आर्थिक असमानता और समकालीन सामाजिक न्याय के प्रश्नों के साथ एकीकृत करके देखने की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। प्रस्तुत समीक्षा इसी समन्वित दृष्टिकोण को अपनाती है।

समकालीन समाज में कबीर के विचारों की प्रासंगिकता

कबीरदास की सामाजिक चेतना वर्तमान भारतीय समाज में भी प्रासंगिक है। आज शिक्षा, कानून और लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास के बावजूद जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्करण, आर्थिक असमानता और श्रम के प्रति असमान दृष्टिकोण जैसी समस्याएँ विभिन्न रूपों में दिखाई देती हैं। ऐसी परिस्थितियों में कबीर की वाणी मनुष्य की समान गरिमा और सामाजिक व्यवहार में निष्पक्षता की आवश्यकता पर बल देती है।

कबीर के विचारों को वर्तमान संदर्भ में निम्नलिखित क्षेत्रों से जोड़ा जा सकता है:

1. जातिगत समानता: जन्म के आधार पर व्यक्ति की योग्यता और प्रतिष्ठा निर्धारित करने का विरोध।
2. श्रम की गरिमा: प्रत्येक पेशे और ईमानदार श्रम का सम्मान।
3. धार्मिक सहिष्णुता: विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच संवाद और पारस्परिक सम्मान।
4. शिक्षा एवं जागरूकता: रूढ़ियों, अंधविश्वासों और भेदभावपूर्ण मान्यताओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि।
5. सामाजिक न्याय: वंचित समूहों के लिए सम्मान, अवसर और समान भागीदारी को प्रोत्साहन।

आधुनिक दलित साहित्य और हाशिये के समुदायों की साहित्यिक अभिव्यक्ति पर उपलब्ध शोध भी यह स्पष्ट करता है कि साहित्य सामाजिक बहिष्करण को उजागर करने तथा वंचित समूहों की पहचान को सामने लाने का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकता है।

हालाँकि, कबीर के विचारों को वर्तमान सामाजिक समस्याओं का पूर्ण समाधान मानना उचित नहीं है। सामाजिक न्याय के लिए वैचारिक परिवर्तन के साथ-साथ प्रभावी कानून, समान शैक्षिक अवसर, आर्थिक संसाधनों तक पहुँच और संस्थागत सुधार भी आवश्यक हैं। कबीर का साहित्य इन प्रयासों को मानवीय तथा नैतिक आधार प्रदान कर सकता है।

निष्कर्ष

समग्र रूप से कबीरदास का साहित्य मध्यकालीन भारतीय समाज की रूढ़ियों, जातिगत असमानताओं, धार्मिक पाखंड और सामाजिक श्रेष्ठता की धारणाओं के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण वैचारिक हस्तक्षेप प्रस्तुत करता है। उनकी वाणी में शोषित एवं वंचित वर्गों की समस्याओं को समझने के लिए सामाजिक आलोचना, मानवीय समानता, श्रम की गरिमा और नैतिक आचरण से संबंधित महत्वपूर्ण संकेत मिलते हैं। कबीर ने मनुष्य की पहचान को जन्म, जाति, धन और बाहरी धार्मिक प्रदर्शन से ऊपर उठाकर देखने का आग्रह किया। उनकी भाषा की सहजता और व्यंग्यात्मक शैली ने सामाजिक आलोचना को जनसामान्य तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

समीक्षित साहित्य से यह भी स्पष्ट होता है कि कबीर की सामाजिक चेतना को केवल धार्मिक सुधार तक सीमित नहीं किया जा सकता। उसमें सामाजिक सम्मान, रूढ़ियों के प्रतिरोध और मानवीय संबंधों की समानता का व्यापक पक्ष विद्यमान है। साथ ही, उनकी रचनाओं की ऐतिहासिकता, विभिन्न पाठ-परंपराओं और आधुनिक व्याख्याओं के बीच अंतर को ध्यान में रखना आवश्यक है। निष्कर्षतः कबीर का साहित्य समकालीन समाज को जातिगत भेदभाव, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक बहिष्करण के विरुद्ध विचार करने की प्रेरणा देता है। उनके विचारों का वर्तमान संदर्भ में विवेकपूर्ण अध्ययन सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा पर आधारित समाज के निर्माण में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. बिठोरे, ए. के. (2022). साहसिक संत कबीर का सामाजिक दर्शन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च - ग्रंथालय, 10(3), 112-119.
2. फर्नांडो, डब्ल्यू. सी. एम. (2016). आधुनिक भारतीय समाज के लिए जाति व्यवस्था पर कबीर की सच्चाई उजागर करने वाली कविताओं की प्रासंगिकता. SASA दसवीं वर्षगांठ सम्मेलन.

3. फ्रीडलैंडर, पी. (2012). कबीर और प्रिंट की दुनिया: पहचान बनाना. थीसिस इलेवन, 113(1).
4. हेस, एल., और सिंह, एस. (2002). कबीर का बीजक. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. ललिथम्मा, एम., और ओकेंद्र. (2022). समाज की सामाजिक स्थिति और उसका अनुकूलन: कबीर दास के साहित्य में. जर्नल ऑफ़ एडवांसेज एंड स्कॉलरली रिसर्च इन एलाइड एजुकेशन, 19(2), 94–99.
6. लोरेन्ज़ेन, डी. एन. (2014). कबीर और कबीर पंथ में असहमति. वी. रामास्वामी (सं.), भारतीय इतिहास में भक्ति और असहमति (पृष्ठ 169–187).